मङ्गल फिर आएगा, यह विश्वास जगाना है

भारतीय संस्कृति के गुणगायक असंख्य गीतों में एक गीत मुझे सर्वाधिक प्रिय है। निश्चित ही आपने भी इसे अनेक बार गुनगुनाया होगा! 'है प्रीत जहाँ की रीत सदा, मैं गीत वहाँ के गाता हूँ, भारत का रहने वाला हूँ, भारत की बात सुनाता हूँ'। पचास बरस पुराने हिंदी चलचित्र 'पूरब और पश्चिम' में उपयोग किए गए इस गीत के यूँ तो हर अंतरें भारतीयता के महात्म्य का बखान करते हैं मगर भारतवासियों के मन की महिमा अंतिम अंतरे में अद्वितीय साहित्यिक सुंदरता से अभिव्यक्त हुई है। हिंदुओं के संवेदनशील ह्रदय के प्रति गीतकार श्यामलाल बाबू राय यानी इंदीवर ने सच ही लिखा है कि 'इतनी ममता जहाँ नदियों को भी माता कह के बुलाते हैं, इतना आदर इंसान तो पत्थर भी पूजे जाते हैं। इस धरती पे मैंने जनम लिया, ये सोच के मैं इतराता हूँ। भारत का रहने वाला हूँ, भारत की बात सुनाता हूँ।'

गुन भई साधो

गणेशोत्सव एक ओर एक चक्र की समाप्ति का प्रतीक है तो दूसरी ओर नवीन चक्र का शुभारंभ है। यह देवता के प्रस्थान जन्य उपजे शून्य का सन्नाटा नहीं है बल्कि पुनरागमन के विश्वास का वह बीज है जो आगामी पर्व तक हमारे ह्रदय में फलता हुआ विश्वास और उल्लास को, कर्म और ऊर्जा को पोषित करता रहता है।

सर्जन बहाना है, मंगल फिर आएगा, यह विश्वास जगाना है

सीख यह है कि उत्सव हो या पूजन, धरती हो या जीवन सब निरन्तर और अनन्त है। सनातन होकर नित नूतन होते हैं और शाश्वत होने से मिट-मिटकर भी लौट-लौट आते हैं। विसर्जन के बहाने अपने विश्वास को प्रबल कीजिए कि मंगलमूर्ति की तरह मङ्गल फिर आएगा।

डॉ. विवेक चौरसिया
पौराणिक साहित्य के अध्येता

यह इतराने वाली गौरवानुभूति के साथ ममता और आदर की पराकाष्ठा ही है जिसमें हिंदू निर्गुण पाषाण, मिट्ठी या काष्ठ आदि शास्त्रोक्त उपादानों से भावनानुरूप ईश्वर की सगुण प्रतिमा गढ़कर उसे जीवंत मान पूजते और धन्य होते हैं। सनातन संस्कृति के ये अनुयायी सूर्य-चन्द्र आदि नक्षत्रों, नदी-सागर आदि जलाशयों, पीपल-बरगद आदि वृक्षों, गाय-गज जैसे पशुओं तथा सर्प जैसे विषधर जन्तुओं की ही पूजा नहीं करते जिनमें ऊर्जा, चेतना और जीवन हैं बल्कि जड़ पत्थर और अनगढ़ माटी से भी स्वरूप का सृजन कर जीवन सौन्दर्य की सृष्टि करने में निष्णात हैं। हम हिंदू कामदगिरि और गोवर्धन जैसे पर्वतों को ही नहीं पूजा नहीं करते बल्कि छोटे-से शालिग्राम में भी समस्त देवताओं का निवास और बालु रेत से निर्मित शिव लिङ्ग में सदाशिव के वास की सुवास महसूस लेते हैं।

इसके मूल में भारत भूमि के ऋषि-मुनियों, ज्ञानियों-ध्यानियों का वह चिंतन और दर्शन है जो कण-कण में ईश्वरीय सत्ता की उपस्थिति को स्वीकारता है। हमारे मनीषियों ने हमें सिखाया है कि प्रकट में चेतन प्रतीत होने वाला ही चेतन नहीं है बल्कि जड़ में भी चेतना है, जीवन है। जब जड़ पत्थरों के परस्पर घर्षण और अरणी मंथन से आग प्रकट हो सकती है तब ये जड़ कैसे हैं? क़दाचित इसी भाव से 'कंकर-कंकर शंकर हैं' जैसी सूक्ति जन्मी और श्रीराम को ही परम परमात्मा मानने वाले बाबा तुलसी ने गाया कि 'सिय राममय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरी जुग पानी।' अर्थात सारा संसार ही प्रणम्य है क्योंकि कतरा-कतरा, कण-कण, तृण-तृण सब ईश्वरमय है।

इस उदार, उदात्त, सर्वस्वीकार्य और सर्वपूज्य भावना तथा आस्था का सबसे अद्‌भुत और अभिनव रङ्ग है माटी की मूरत को मंत्रों की शक्ति से प्राण प्रतिष्ठित कर लेना। मानो हम निर्जीव को सजीव ही नहीं मानते, जड़ को चेतन ही नहीं स्वीकारते, अपितु उससे अनेक पग आगे और असंख्य सोपान ऊपर अधिकतम चैतन्य से परिपूर्ण कर जीवंत और जाग्रत कर लेते हैं। ठीक उसी तरह प्राणवान जैसे आप, हम हैं और उतना ही कृपावान जैसे ईश्वर हैं।

पूजा विधान में इस उपक्रम की संज्ञा आवाहन है। जैसे गणेश चतुर्थी को हम घर गणेश प्रतिमा लाए तो आवाहन किया। हे हेरम्ब त्वमेह्योहि ह्यम्बिकात्र्यम्बकात्मज। सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितु : पित :।। अर्थात हे माता पार्वती तथा त्रिलोचन महादेव के पुत्र हेरम्ब! आप आइए, आइए। आप सिद्धि और बुद्धि के पति हैं, तीन नेत्रों से सुशोभित हैं, लाखों का लाभ कराने वाले तथा पिता के भी पिता हैं, यहाँ पधारिए। मानो इसी के साथ गणेशजी अपनी शक्तियों के साथ अपनी प्रतिमा में पधारते हैं और जड़ माटी की प्रतिमा चैतन्य हो जाती है।

नैमित्तिक व्रत-पूजन का सबसे रोचक रङ्ग यह है कि जिस तरह प्रारंभ में आवाहन होता है उसी तरह समापन पर विसर्जन किया जाता है। मानो मनोरथ पूर्ण हुए तो अब पधारी हुई चेतना भी प्रतिमा से अपनी शक्ति और चेतना का संवरण कर देवलोक में पुनर्वास के लिए प्रस्थान कर लें। जैसे हम गणेश विसर्जन की बेला में उच्चारते हैं 'ॐ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ, स्वस्थाने परमेश्वर यत्र ब्रह्मादयो देवाः, तत्र गच्छ हुताशन' हे देवश्रेष्ठ, परमेश्वर, अग्निदेव! आप अपने स्थान पर, जहाँ ब्रह्मा आदि देव हैं, वहाँ जाइए। सबसे अद्‌भुत यह कि 'यान्तु देवगणा : सर्वे पूजामादाय मामकीम्। इष्टकामसमृद्धयर्थं पुनर्अपि पुनरागमनाय च।।' अर्थात सभी देवगण मेरी पूजा ग्रहण करके मेरी कामनाओं को पूर्ण कर, पुनः आगमन के लिए वापस जाएं। यानी जाए अवश्य क्योंकि कार्य हो गया मगर जाए इसलिए कि फिर लौटकर आ सकें। इसी का नाम विसर्जन है।

हमारी संस्कृति में गणेशजी की तरह अन्य देवी-देवताओं का ही आवाहन और विसर्जन नहीं है बल्कि कथा तक का विसर्जन है। आवाहन जितना भावनात्मक हैं, विसर्जन उतना ही प्रतीकात्मक है। इसका शाब्दिक अर्थ भले समापन, दान या त्याग हो मगर इसका प्रतीक पूरी ऊर्जा के साथ कर्म में जुटने से जुड़ा है। यह विसर्जन होकर भी विशिष्ट सृजन है। यह एक ओर एक चक्र की समाप्ति है तो दूसरी ओर नवीन चक्र का शुभारंभ है। यह देवता के प्रस्थान जन्य उपजे शून्य का सन्नाटा नहीं है बल्कि पुनरागमन के विश्वास का वह बीज है जो आगामी पर्व तक हमारे ह्रदय में फलता हुआ विश्वास और उल्लास को, कर्म और ऊर्जा को पोषित करता रहता है। यह सृष्टि के एक चक्र की भांति है जो पुनः पुनः प्रकट होती

रहती है। जैसे माटी की प्रतिमा जल में विसर्जित की जाती है, वैसे ही सृष्टि के समापन पर सब कुछ जल में विलीन हो जाता है। समाप्त होने के लिए नहीं, नए सिरे से सृजित होने के लिए। साधो! सीख यह है कि उत्सव हो या पूजन, धरती हो या जीवन सब निरन्तर और अनन्त है। सनातन होकर नित नूतन होते हैं और शाश्वत होने से मिट-मिटकर भी लौट-लौट आते हैं। इस कठिन कोरोनाकाल में विसर्जन के बहाने अपने विश्वास को प्रबल कीजिए कि मङ्गलमूर्ति की तरह मङ्गल फिर आएगा।

#vivekchaurasiya
#gunobhaisadho

(लेखक अध्यात्मिक व भारतीय संस्कृति से जुड़े विषयों पर नियमित लेखन करते हैं)

(साभार- इन्दौर से प्रकाशित दैनिक प्रजातंत्र से)